International Journal of Multidisciplinary Research and Development

International Journal of Multidisciplinary Research and Development

Volume: 2, Issue: 5, 230-234
May 2015
www.allsubjectjournal.com
e-ISSN: 2349-4182
p-ISSN: 2349-5979
Impact Factor: 3.762

Kiran Grover
Academic Department: P G Department of Hindi
Institutional Affiliation: D A V College, Abohar, Punjab

Correspondence:
Kiran Grover
Academic Department: P G Department of Hindi
Institutional Affiliation: D A V College, Abohar, Punjab

उपन्यासों में विश्लेषित साम्प्रदायिकता का अन्तहीन सिलसिला

Kiran Grover

सारांश
समाज में साम्प्रदायिकता अपने चरम शिखर पर आरूढ़ होकर प्रबुद्ध जनों को बुरी मरह मथ रही है। धर्म के प्रति बनावटी आस्था का उपयोग समाज को नपुंसक बना रहा है। भारत में दिन प्रतिदिन धार्मिक और राजनीतिक तनाव बढ़ रहा है। भाषा को साम्प्रदायिकता के दायरे में लाना कट्टरवादी सोच का ही परिणाम है। मज़हब की आड़ में लोग स्वार्थ सिद्धि करने का प्रयास करते हुए मज़हब के मूल आदर्शों से भटक जाते हैं। साम्प्रदायिकता उग्र रूप में खुली बर्बरता की शक्ल ले लेती है और साम्प्रदायिकता का अन्तहीन सिलसिला आज भी चल रहा है। साम्प्रदायिकता चाहे अल्पसंख्यकों की हो बहुसंख्यकों की वह हमेशा गलत होती है।समाज और साहित्य एक दूसरे के पूरक होते हैं। समाज के हिसात्मक रवैये को देखकर साहित्यकार आतंकित हो उठता है क्योंकि साम्प्रदायिकता मानवता को ही तोड़ मरोड़ रही है। उन विचारों के जरिये साहित्यकार सामाजिक परिवर्तन की मांग करते हुए मनुष्य को विवेकशील बनाकर समाज में क्रान्ति का आह्वान करना उसका ध्येय बन जाता है। उपन्यासकारों ने साम्प्रदायिकता के कारण होने वाले दुष्परिणामों को सामने रखकर पाठक वर्ग की आंखें खोलने का प्रयास किया है।

बीज शब्दः– साम्प्रदायिकता, सिलसिला, भाषा, उपन्यास।

मूल प्रतिपादन
समाज में जो घटित हो चुका है, घटित हो रहा है,उसके दवाबों को इतिहास झेल रहा है। साम्प्रदायिकता जैसी अपराधी मनोवृत्ति ने मानवीयता और मैत्री का संदेश देने वाली हमारी संस्कृति की नींव हिला दी है। भाषा को साम्प्रदायिकता के दायरे में लाना कट्टरवादी सोच का ही परिणाम है। मज़हब अपने आप हानिकारक नहीं लेकिन इसकी आड़ में लोग स्वार्थ सिद्धि में संलग्न होकर मज़हब के मूल आदर्शों से भटक जाते हैं और अन्तहीन सिलसिला मनुष्य के अविवेक के कारण चलता है। साम्प्रदायिकता चाहे अल्पसंख्यकों की हो बहुसंख्यकों की वह हमेशा गलत होती है। उपन्यासकारों ने साम्प्रदायिकता के कारण होने वाले दुष्परिणामों को सामने रखकर पाठक वर्ग की आँखें खोलने का प्रयास किया है। उपन्यासों में साम्प्रदायिकता के विभिन्न पहलुओं को जानने से पहले साम्प्रदायिकता के बारे में जानना आपेक्षित हैः–
सम्प्रदाय का अर्थ होता है–एक पन्थ, एक मत या वाद। कोई भी व्यक्ति सामान्य रूप से किसी मत या धर्म को स्वीकार कर सकता है। यह मानव का निजी अधिकार है। भारतीय संविधान में भी सभी धर्मावलम्बियों को अपनी उपासना पद्धति और अपना संगठन चलाने का प्रावधान सुनिश्चित किया गया है। सम्प्रदाय का अर्थ यहीं तक सीमित था लेकिन समय के साथ साथ एक सम्प्रदाय या धर्म वाला दूसरे सम्प्रदाय या धर्म वाले को नीचा दिखाने,दूसरे के विरुद्ध दलबन्दी करने या मार काट और दमनकारी रवैया अपनाने लगा। इस प्रकार धीरे धीरे सम्प्रदाय सम्प्रदायवाद के रूप में परिणित हो गया। कोई भी विचारधारा जब वाद का रूप धारण का लेती है तब उसकी प्रकृति कठोर और एकांगी हो जाती है।[1] फलतः सम्प्रदायवाद को दूसरे अर्थ में ग्रहण किया जाने लगा जिसके कारण मानव मानव में भेदभाव की प्रवृत्ति पनपने लगी। सम्प्रदायवाद को विपिन चन्द्र जी ने यों व्यक्त किया है– सम्प्रदायवाद एक ऐसा विश्वास है जो सामान्य सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक हितों के लिए एक समूह द्वारा एक विशेष धर्म स्वीकारने से पनपता है।

. "Simply put, communalism is the belief that because a group of people follow a particular religion they have, as a result, common social, political and economic interests."[2]

धर्म जब तक व्यकितगत दायरे में रहता है तो वह आध्यात्मिक होता है लेकिन जैसे ही वह किसी समूह की पहचान या प्रवृत्ति बनता है तो वह साम्प्रदायिक हो उठता है। समूह में आते ही वह एक

संस्थान का रूप लेने लगता है और संस्थान बनते ही उसे सत्ता की जरूरत पैदा हो जाती है।3 जब मनुष्य सम्प्रदाय या धर्म की बढ़ौतरी में खुद की बढ़ौतरी देखने लगते हैं। स्वार्थ से प्रेरित होकर धर्म की मानवीयता से दूर हो जाते हैं,राजनीतिक कार्यो में दखल अन्दाज़ी करना प्रारम्भ कर देते हैं तब सम्प्रदाय का रूप बदल जाता है। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री श्री जवाहर लाल नेहरु सम्प्रदायवाद को समाज का कोढ़ मानते थे।उनकी राय में सम्प्रदायवाद एक आधुनिक युग का नहीं, बल्कि पिछड़े राष्ट्र का बिल्ला है।लोगों को अपने धर्म को ग्रहण करने का पूर्ण अधिकार है। पर धर्म को राजनीति में आयात करने और देश को तोड़ देने की यह प्रवृत्ति यूरोप में 300 या 400 साल पहले हुई थी।

"Communalism is the badge of a backward nation, not of the modern age. People have their religion and they have a right to hold firmly to it, but to import religion into politics and to break up the country is something which was done in Europe 300 or 400 years back."[4]

नेहरु जी ने सम्प्रदायवाद को पिछड़े राष्ट्र की निशानी बताया। भले नेहरु जी ने सम्प्रदायवाद पर टिप्पणी बहुत सालों पहले दी थी, पर यह एक सच्चाई है कि सम्प्रदायवाद आज भी राष्ट्रीयता की नींव खोखली कर रहा है। साम्प्रदायिकता, जातिवाद और आतंकवाद के स्थूल रूपों में तथा सामाजिक उत्पीड़न एवम् आर्थिक शोषण आदि के सूक्ष्म रूपों में हिंसा की मनोवृत्ति समाज में तेजी से फैलती जा रही है जोकि हमारी राजनीतिक सामाजिक संस्थाओं व आर्थिक प्रक्रिया पर प्रश्न चिह्न भी लगाती है , साथ ही उन सभी प्रक्रियाओं को भी कटघरे में खड़ा कर देती है जिनका सम्बन्ध हमारे संवेदनात्मक जीवन से है।5 यह आकस्मिक नहीं कि साम्प्रदायिक उन्माद बढ़ने पर लोग पड़ोसियों तक को पहचानने में इन्कार करने लगते हैं।समाज को आपसी मार काट के माहौल में बदल देते हैं। साम्प्रदायिकता अपने उग्र रूप में खुली बर्बरता का शक्ल ले लेती है। अगर संस्कृति मानवता है तो साम्प्रदायिकता बर्बरता है।6

समाज और साहित्य एक दूसरे के पूरक होते हैं। साहित्य रचना सामाजिक व्यवस्था के अनुसार ही विनिर्मिति होती है। तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था से प्रभावित होकर साहित्यकार अपनी रचनाओं का सृष्टि करता है। सामाजिक व्यवस्था की निरन्तरता हर कृति में एक प्रकार की नहीं होती। साहित्य के परिवर्तन के साथ ही सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन आने की संभावना होती है। समाज की सारी व्यवस्थाओं को साहित्यकार सांकेतिक रूप में अपनी रचनाओं में समेट कर रचना क्षेत्र को समृद्ध करता रहता है।साहित्य की अनेक विधाएं हैं, इन विधाओं में उपन्यास अपने आप में महत्वपूर्ण है।समाज में घटित घटनाओं का अत्यन्त सजग बोध उपन्यास के द्वारा मिलता है। इस सजग बोध व बोध वृति से मनुष्य की बौद्धिकता या चेतना व्यापक हो जाती है।[7] मनुष्य सामाजिक प्राणी है, इसलिए कुछ सामाजिक व्यवस्थाओं का सामना करना पड़ता है।समाज में स्थित इन व्यवस्थाओं में अर्थात् जातीय, नैतिक, शैक्षणिक आदि सामाजिक व्यवस्थाएं शामिल होती हैं, इन सामाजिक व्यवस्थाओं का जिक्र न करने से साहित्य रचना अधूरी रह जाती है।[8]

आज साम्प्रदायिकता के अनेक चेहरे हमारे सामने विद्यमान हैं। इतिहास बोध के जरिए पता चलता है कि साम्प्रदायिकता के बीज तो निश्चित रूप से मध्यकाल में बोये गये थे और उन्हें फलने फूलने का अवसर देने का श्रेय मुख्यतः ब्रिटिश शासन व आज की राजनीतिक व्यवस्था को है। अंग्रेज़ों के आने से पहले भारत में भी धार्मिक विद्वेष समय समय पर उभरा,आपसी मारकाट हुई, धार्मिक कट्टरता ने अनेक बार धार्मिक विद्वेष का रूप धारण कर लिया। अंग्रेज़ी राज ने हमारी कमजोरियों का फ़ायदा उठा कर हमारी एकता को नष्ट किया।पंजाब समस्या, 1984 का सिक्ख विरोधी दंगा,अयोध्या विवाद,1988–1989 में पूरे देश में साम्प्रदायिक तनाव, 1992 में बावरी ढांचे का ध्वंस, गुजरात दंगा आदि जैसे साम्प्रदायिकता का लम्बा और भयानक सिलसिला जारी है।[9] धार्मिक इतिहास पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि साम्प्रदायिक संघर्ष सिर्फ हिन्दू मुसलमानों तक सीमित नहीं है अपितु बौद्ध,ब्राह्मण,शैव–वैष्णव के बीच संघर्षों की लम्बी परम्परा इतिहास में मौजूद है।आधुनिक भारत में साम्प्रदायिकता की समस्या एक अलग अन्दास में उठी है,इसके कारण बदली हुई परिस्थितियाँ भी हैं,हमारा भौतिक परिवेश भी पहले जैसा नहीं रहा।इसमें युगानुरूप जटिलताओं का समावेश हुआ है।आज हम देश में जिस साम्प्रदायिकता को देख रहे हैं,यह राष्ट्रवाद के चिन्तन के साथ उभरा है तथा इसके अनेक पहलू हैं। भले ही साम्प्रदायिकता को धार्मिक रूप में रखने की कोशिश की जाती है लेकिन इसके निहितार्थ राजनीतिक व सामाजिक हैं।

समाज के हिसात्मक रवैये को देखकर साहित्यकार आतंकित हो उठता है क्योंकि साम्प्रदायिकता मानवता को ही तोड़ मरोड़ रही है। अमनुष्यता के हर मुद्दे का प्रतिरोध करना साहित्यकार का समाज के प्रति दायित्व बन जाता है जिसे साहित्यकार कथा साहित्य के माध्यम से पाठकों को जागरूक करने का धर्म निभा रहे हैं। साहित्यकार के दायित्व पर प्रेमचन्द जी का वक्तव्य प्रस्तुत है–'जो कुछ असुन्दर है, अभद्र है, मनुष्यता से रहित है, वह उसके लिए असह्य हो जाता है।उस पर वह शब्दों और भावों की सारी शक्ति से वार करता है। यों कहिए कि वह मानवता,दिव्यता और भद्रता का ताना बांधे होता है। जो दलित है,पीड़ित है, वंचित है–चाहे वह व्यक्ति हो या समूह,उसकी हिमायत और वकालत करना उसका फर्ज़ है।'[10]

समाज पर जब कोई खतरा आन पड़ता है तो साहित्यकार उसका पूर्व ही आभास पा लेता है। उसका मन यह सोचकर व्याकुल हो उठता है, व्याकुलता कही अवस्था में उसके मन का संघर्ष उन्हें कई पहलुओं पर सोचने पर मजबूर करता है जिससे नये विचारों की सृष्टि होती है। उन विचारों के जरिये साहित्यकार सामाजिक परिवर्तन की मांग करते हुए मनुष्य को विवेकशील बनाकर समाज में क्रान्ति का आह्वान करना उसका ध्येय बन जाता है। साहित्यकार पाठकों को शिक्षित करता है कि सम्प्रदाय बुरे नहीं होते, साम्प्रदायिकता खोटी नहीं होती अपितु सम्प्रदाय के प्रति निष्ठावान् बनें।[11]साहित्यकारों ने उपन्यासों के माध्यम से साम्प्रदायिकता के प्रति चेतना जागृत करके, राजनीतिज्ञों को मीडिया के हाथों का खिलौना बताकर अपना आक्रोश व्यक्त किया है जिसका विवेचन इस प्रकार हैः–

साम्प्रदायिक वैर फैलाने के पीछे राजनीतिज्ञों की रणनीति कार्यरत रहती है। धर्म के नाम पर धर्मी लोग संकीर्ण विचारधारा का प्रचार व प्रसार करके अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हैं।धर्म सम्बन्धी संकीर्ण विचारधारा भारत की संवैधानिक धर्मनिरपेक्षता की राह में रोड़ा बनी हुई है। राजेन्द्र यादव जी ने छद्म धर्मनिरपेक्षता को सांस्कृतिक आतंकवाद बताकर जनता को सचेत किया है क्योंकि इसका लक्ष्य हिन्दू राष्ट के जरिये तानाशाही स्थापित करना है। धार्मिक अंधविश्वासों के साथ साम्प्रदायिक वैर फैलाने में भी मीडिया ने राजनीतिज्ञों का साथ दिया है। साम्प्रदायिक उन्माद फैलाने में भी मीडिया की अहम् भूमिका रही है। मीडिया की यह स्वार्थपूर्ण व्यवहार प्रजातान्त्रिक देश के लिए संकटग्रस्त स्थिति बनी हुई है। राम पुनियानी जी ने साम्प्रदायिक हिंसा की बात उठाते हुए लिखा है कि' साम्प्रदायिक हिंसा समाज में गहराई से पैठी सड़न की अभिव्यक्ति है। यह राजनीतिक नेतृत्व के कुछ तत्वों द्वारा खेले जा रहे साम्प्रदायिक राजनीति के खेल की भयानक अभिव्यक्ति है।

साम्प्रदायिक राजनीति सभी सामाजिक पहचानों पा धर्म का मुखौटा लगा देती है।'12 स्वतंत्रता संग्राम के समय राष्टीय जागरण को प्रश्रय देने मीडिया ही आज भूमंडलीकरण एवम् साम्प्रदायिकता के दौर में अपना स्वार्थ साधने के लिए राष्ट्रीय एकता को तोड़ रहे हैं। प्रफुल्ल कोलख्यान जी ने लिखा है कि ' साम्प्रदायिकता और जातिवाद की चपेट का असर तो अपनी जगह है।दल और गिरसोह की सता अलग अलग नहीं है। कभी दल गिरोह जैसा व्यवहार करता है तो कभी गिरोह दल के रूप में सज धजकर सामने आता हैं। हमारा समाज एक तरह से सामाजिक अपराध से लिप्त समाज बनता जा रहा है।'13राजनीति की दमनकारी रूप धर्म का सृजनात्मक पक्ष बनकर उभरता है। हर सम्प्रदाय वाले अपनी सुरक्षा के लिए अपने सम्प्रदायों का साथ देते हैं ताकि उन पर अन्य सम्प्रदाय का आक्रमण न हो। ऐसे आतंक भरे माहौल की सृष्टि करना साहित्यकार का लक्ष्य होता है।

6 दिसम्बर ,1992 को बावरी मस्जिद का ध्वंस राजनीतिज्ञों की रणनीति का फल है।यह साम्प्रदायिक सोच की परिणति है। बावरी मस्जिद की घटना एक धर्म विशेष के विरुद्ध छेड़ा गया जिसके कारण साम्प्रदायिक दंगे हुए। साम्प्रदायिक दंगे से सिर्फ अपराध और खौफ़ के माहौल की सृष्टि होती है–' बावरी मस्जिद का ध्वंस मात्र एक जघन्य अपराध या बर्बर काम नहीं था, वह भारतीय संविधान के धर्मनिरपेक्ष ढांचे को ढाने की कोशिश करने वाला नृशंस कृत्य था'[13] कमलेश्वर ने राजनीति के कारनामों को धर्मनिरपेक्षता के विरुद्ध माना। राजनीतिज्ञ अपनी ही रणनीति का परिपोषण करते हैं। बावरी मस्जिद को तोड़ का राम मन्दिर का निर्माण जल्दी न करना राजनीति का ही तंत्र है ताकि वह आतंक की स्थिति जब चाहें पैदा का सकें। गुजरात राज्य को भी भयंकर साम्प्रदायिक दंगों का शिकार होना पड़ा।[14] फरवरी 2002 को गुजरात में साम्प्रदायिक दंगे छिड़ गये। यह वही गुजरात हैं जहां महात्मा गांधी जैसे महारथियों ने देश भक्ति की मिसाल पेश की।

बावरी मस्जिद पर पड़ी हर कुल्हाड़ी के पीछे मुसलमानों के खिलाफ़ संचित घृणा का आवेश था। यह तो इतिहास है लेकिन बावरी मस्जिद की घटना अतीत में हुई, वर्तमान में है और भविष्य में रहेगी। आज बावरी मस्जिद मसला राजनीति का अभिन्न अंग बन गया है। कमलेश्वर जी ने इतिहास के तथ्यों और सत्यों को रेखांकित कर वर्तमान इतिहास की विडम्बनाओं को दिखाना चाहा है कि सता केन्द्रों और प्रायोजत इतिहास हमें किस कदर सच्चाई से दूर ले जाना चाहता है।उसका एक नमूना है, बाबर द्वारा अयोध्या में राम मन्दिर का ध्वंस करके बावरी मस्जिद बनने की दास्तान। अयोध्या जैसे वर्तमान विषय को देखकर यह पता चलता है कि यह आगामी विभाजनों का बारूद है। कमलेश्वर जी ने 'कितने पाकिस्तान' में इस मसले को उजागर किया है–'क्यों मरने से पहले तो तुम कहा करते थे कि दस बार नहीं,हज़ार बार मरना पड़े तो भी राम जन्मभूमि के लिए मरोगे–––अब क्यों डर रहे हो।'[15] त्रिशूलधारी के माध्यम से हिन्दुओं का संघर्ष दिखाना कमलेश्वर जी का लक्ष्य है। राम जन्मभूमि बावरी मस्जिद समस्या हिन्दू मुसलमानों के बीच का संघर्ष है। मज़हब ने मानव को अन्धा बना दिया।सारे मज़हब मानव को यही सिखाते हैं कि सबसे पहले मानव एक इन्सान बनना चाहिए।[16]

रवीन्द्र वर्मा जी ने 'निन्यानवें' में बावरी मस्जिद समस्या का चित्रण दो लड़कियों के मिट्टी की मस्जिद बनाकर गिराने सम्बन्धी एतराज के माध्यम से किया है। दो लड़कियों के मस्जिद सम्बन्धी एतराज पर जब उनकी पिटाई अन्य लड़कियों से होती है तो शिकायत प्रिंसीपल के पास पहुंचती है। प्रिंसीपल का सोना राजनीतिज्ञों के मौन का संकेत है। इस उपन्यास में बल्लो का कहना है–'जनता का क्या चाहती है, बल्लो कहता यह खबर हमें नेता देते हैं।असल में जब वे कहते हैं कि जनता मन्दिर चाहती है तो उसका मतलब होता है कि नेता मन्दिर चाहते हैं यह राजनीति है।[17]यहां मन्दिर से अभिप्राय कुर्सी ग्रहण किया गया है। मन्दिर के नाम से नेता अपनी कुर्सी को दृढ़ करते हैं।

काशी नाथ सिंह कृत 'काशी का अस्सी' में बावरी मस्जिद को उठाया गया है। इसमें व्यंग्य की दृष्टि से राजनीति से सम्बन्धित तथ्यों को उजागर किया गया है। अयोध्या के तमाशे का उल्लेख देखिए–'अगर प्राकग्राम बनाइए तो कार सेवा के बहाने हम भी तमाशा देखने अयोध्या चलें।'अयोध्या की तरफ जाने वालों में अस्सी के कार सेवक भी हैं, वे राम का नाम लेकर नेताओं के उपदेश सुनकर कुछ सोचने से पहले अयोध्या की ओर आ रहे हैं उनक नारे देखिए–'राम लला हम आएंगे जूलुस के बोलने से पहले राय साहब का लाउडस्पीकर बोलता–'मस्जिद वहीं बनाएंगे।उधर से बच्चा बच्चा राम का ।'[18]

सरकार की रथ यात्राएं मानव के हदय में साम्प्रदायिकता की जड़ और पुष्ट बना देती हैं अलका सरावगी ने 'कलि कथा वाया बायपास' में रथ यात्रा व बावरी मस्जिद समस्या को रेखांकित किया है–'अभी कुछ दिन पहले मैने एक पुराने अख़बार में पढ़ा कि भाजपा का अमृतलाल नागर जी ने पीढ़ियां उपन्यास में बावरी मस्जिद समस्या का जिक्र किया है। इस उपन्यास के सुमन्त टंडन का वक्तव्य हैः–'चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का बनवाया राम मन्दिर टूट गया। बावरी मस्जिद बन गई।तब से इन पांच छः सौ वर्षो में इस भूमि ने कभी चैन का दिन नहीं देखा। घृणा की प्रतिक्रिया में घृणा और हिंसा की प्रतिक्रिया में हिंसा ही उभर रही है।राम जो चाहते हैं वही होता है।'[19]अयोध्या में अब भी चैन की स्थिति में नहीं है। आज भी राजनीतिज्ञ चुनाव आते ही राम मन्दिर का नाम लेकर वोट मांगते हैं। आज की राजनीति सदाचार से भिन्न होकर बिल्कुल मज़हब परस्त हो गयी है।

संगठनों और सत्ता के भीतर और सत्ता को लेकर चलने वाली लडाइयाँ कुत्सित होती हैं। एक तरफ़ धर्म केन्द्रित राजनीति का वीभत्स रूप है तथा दूसरी तरफ धार्मिक सम्प्रदायों के भीतर रूढ़िवादी ताकतों का हिंसक रूप। भले ही धर्म के भीतर निहित आध्यात्मिक चेतना मनुष्य की अनिवार्यता होती है, पर दुखद तथ्य यह है कि धर्म का पहले भी दुरूपयोग होता रहा है और आज भी हो रहा है। दूधनाथ सिंह जी ने 'आखिरी कलाम' उपन्यास में इस अवस्थिति का प्रतिपादन किया गया हैः'धर्म का यह वह रूप है जो घोषित तौर पर क्फर्यू और देखते ही गोली मारने के आदेश के बावजूद मस्जिद के मलबे के ढेर पर आरती के समय इतने लोगों के एक साथ 'जै श्री राम' बोले जाने पर कोई रोक नहीं लगाता।' [20]

साम्प्रदायिकता आज भी हमारे समाज में विद्यमान है। सन् सैंतालीस में बोया ज़हर आज भी अपनी श्रेष्ठता के साथ सफ़र जारी करता रहा है। वास्तव में साम्प्रदायिक भावनाओं के राजनीतिकरण के पीछे ब्रिटिश शासन था। कमलेश्वर के 'कितने पाकिस्तान'का मुख्य मकसद भी यही है कि विभाजन से हमेशा जनता को अतीव दुख उत्पन्न होता है। संसार में जहां जहां विभाजन हुआ वहाँ वहाँ कभी न समाप्त होने वाली समस्याएँ दृष्टिगत होती हैं। इस उपन्यास में यह सिद्ध करना चाहा है कि कहीं भी कभी भी पाकिस्तान न बनने दें। पाकिस्तान बनने के बाद अनेक मुसलमानों की ज़िन्दगी बर्बाद हो गईः–'उसी सन् सैंतालीस वाली फ़सल से यह ज़हर जन्मा है हुजूर! जो हिन्दू को ज़्यादा बड़ा हिन्दू और मुसलमानों को ज़्यादा बड़ा मुसलमान बनाता है।[21]

साम्प्रदायिकता चाहे अल्पसंख्यकों की हो या बहुसंख्यकों की लेकिन उसकी परिणति बुरी होती है। जब सम्प्रदाय की भावना व्यक्ति के मानस पर हावी हो जाती तो वह राष्ट व समाज को दूसरे नम्बर पर रखने लगता है। पाकिस्तान केवल एक देश नहीं है अपितु वह साम्प्रदायिक आधार पर बंटे मानवीय इतिहास की त्रासद गाथा है। अंग्रेज़ों ने हिन्दू और मुसलमानों के मन में वैमनस्य का बीज बोकर

अपना लक्ष्य पा लिया। इसा कारण इकबाल व वीर सावरकर जैसे देशभक्त भी सम्प्रदाय के नाम पर बंट गये।उदाहरण के लिए'आप कौन , मैं विनायक दामोदर सावरकर, पर आप तो राष्टवादी थे, हिन्दूवादी नहीं। वह पाकिस्तान का इकबाल भी राष्ट्रवादी था, जिसने लिखा 'सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तान हमारा' पर देखते देखते इन्सान शैतान में बदल गया।'[22]

क्षुद्र राजनीतिक स्वार्थ मानवता के लिए घातक होते हैं लेकिन विडम्बना यह है कि राजनेता इसकी परवाह नहीं करते।जनता की भावनाओं को भड़काकर पैदा किये आन्दोलनों की यही ताकत और कमजोरी है।अगर गलत लगने पर भी फैसला बदला गया तो रूढ़ व घटिया ताकतें विचार की दुश्मन बनकर सामने आ जाती हैं।विभाजन सम्बन्धी मांउटबैटन का वक्तव्य देखिए–'आखिर मैंने उन्हें वहीं दिया है जो उन्होंने मांगा है।मैंने विभाजन की जरूरत को पं नेहरू,सरदार पटेल,आचार्य कृपलानी से मंजूर करवा लिया है।–––अब उन्हें पाकिस्तान कि निर्माण के ऐतिहासिक अवसर से पीछे नहीं हटना चाहिए।'[23]

अमृत लाल नागर जी ने 'पीढ़ियां' उपन्यास में यह विभाजन राजनीतिज्ञों की कपट मानसिकता का ही परिणाम बताया है।हिन्दू महासभा के वीर सावरकर ने समान भाव में बंधे भारत की परिकल्पना को मृगतृष्णा के समान जताया है।हिन्दू मुसलमानों के बीच का दबाव एक कड़वा सत्य है–'हिन्दूस्तान हिन्दुओं का राष्ट्र है,उनकी भूमि है,भारत में सिर्फ़ एक देश हो सकता है, वह है हिन्दू देश।मुसलमान यहां अल्पसंख्यक हं और उन्हें भारत के एक प्रदेश में ही शरण लेनी होगी।जहां वे धर्म और जाति की समस्त बेड़ियों से मुक्त होकर स्वतंत्र नागरिक की तरह जीवन यापन कर सकेंगे।'[24]

अलका सरावगी जी ने 'कलिकथा वाया बाइपास' उपन्यास में बंगाल के राजनीतिक मतभेद का उल्लेख किया है। हिन्दू व मुसलमानों के बीच का संघर्ष अतीत से चली आ रही समस्या है। अगस्त 1946 में कलकते की सड़कों पर प्रारम्भ होते दंगों में हज़ार गंधाती लाशें सड़कों से उठाकर गंगा में प्रवाहित कर दी गई।मिलिटी पुलिस हाथ पर हाथ धरे शस्त्रों से लौस खड़ी रही। एक साल की अवधि तक कलकते में लगातार खून खराबा होता रहा।'इस दंगे को इतिहास में द ग्रेट कैलकटा किल्लिंग के नाम से जाना जाता है। इसी किल्लिंग ने देश और बंगाल के विभाजन पर एक तरह से मुहर लगा दी।'[25]

नासिरा शर्मा जी का उपन्यास 'ज़िन्दा मुहावरे' साम्प्रदायिक स्थिति से उत्पन्न मानव चेतना का अंकन करने में सक्षम प्रतीत होता है। भारत की आज़ादी से पूर्व विशेष तबके के मुसलमान नेताओं ने आम भारतीय मुसलमान जनता को समझा दिया कि नया बनने वाला पाकिस्तान तुम्हारे सपनों का देश होगा। मुसलमान जनता में यह डर पैदा हो गया कि बहुसंख्यक हिन्दू जनता इस्लाम मज़हब और संस्कृति के लिए खतरा बन जायेगी।परिणामस्वरूप पाकिस्तानबनने की घोषणा होते ही भारत से विशेषकर उत्तर प्रदेश व बिहार से मुसलमानों का उत्तरपूर्वी पाकिस्तान के लिए प्रयाण शुरू हो गया। इस दौर में बूढ़ों की ज़िन्दगी असहाय होने लगी। जवान होती लड़कियों की शादी मुश्किल हो गई। यहां से चले गये मुसलमानों को वहां की जनता ने हदय से नहीं अपनाया।इस प्रकार धर्मान्धता की विजय हुई पर मनुष्यता पराजित हुई। नासिरा शर्मा जी ने लिखा है कि 'आज दोंनो देशों में रहने वाली व जवान होते ही नस्लें बंटवारे जैसी ऐतिहासिक घटना की चश्मदीद गवाह नहीं है मगर उनकी उनकी अनुगूंज न किये हुए गुनाह की प्रताड़ना बन बचपन से उनका पीछा करती उनके दिल व दिमाग पर फ़साद और कटाक्ष के रूप में कोड़े बरसाती उन्हें आत्मग्लानि के सरोवर में गर्दन तक डुबोती रही है।'[26] नासिरा जी ने बंटवारे के बाद रह गये और पाकिस्तान चले गये मुसलमानों की वेदना को सहानुभूति व संवेदना के साथ अंकित किया है। बंटवारे के बाद की स्थिति अत्यन्त शोचनीय बन गई।निज़ाम के हिन्दोस्तान जाने के लिए विज़ा हेतु भारतीय दूतावास में अनेक चक्कर लगने लगे।सियासी तनाव के कारण निज़ाम को इजाज़त न मिली–'आखिर हिन्दोस्तान सपना बन गया और तन्हाई उसका भाग्य।'[27]इस प्रकार की दर्दनाक मानसिकता का चित्र नासिरा जी ने उभारा है।

हिन्दू व मुसलमानों के संघर्ष का फ़ायदा उठाने वाले अंग्रेज़ लोग भारतीयों को दोष पहुंचाना चाहते थे। अमृतलाल नागर जी ने 'करवट' उपन्यास में इस अवस्थिति का वर्णन किया है कि 'हमारे वतन के प्रतिनिधि बनकर आये अंग्रेज़ लोगों ने कुछ लोगों के मुंह से सुना –आरसमाजी रात दिन चिल्ला रहे हैं कि ये देश आरसमाजियों का है,हिन्दुओं का नही।मुसलमान तो पहले ही से कह रहे हैं कि हिन्दू काफ़िर है, इन्हें मिटाओ।'[28] अंग्रेज़ राज के समय लखनउ में हिन्दू अपने सम्प्रदाय को बचाने के लिए बड़े उत्साह से संगठित हो गये। मुसलमानों में तज़लीम व तन्ज़ीब संस्थाएं भी प्रबल रूप से संगठित हो चुकी थी। हिन्दू व मुसलमान दोंनो ही अपनी राष्ट्रीयता को भूलकर अपने अपने सम्प्रदायों को प्रबल करने के लिए जुटे हुए थे।इस तरह अपने सम्प्रदाय में आस्था रखने वाले अपने देश के बारे में चिन्तित नहीं थे, अगर चिन्ता होती तो अंग्रेज़ दीर्घकाल तक अपने देश पर राज़ न कर सकते।

साम्प्रदायिकता की समस्या की अभिव्यक्ति के साथ ही विभाजन के इतिहास को भी परखा जाता है। विभाजन ने ही साम्प्रदायिकता की नींव डाली थी।इसी कारण विभाजन की भीषणता, बावरी मस्जिद के ध्वंस, गुजरात के हत्याकांड को उपन्यासों में बडी बारीकी से उभारा गया है। विभाजन के इतिहास से कुछ न सीख पाना भारतीयों की सबसे बड़ी भूल थी। बलवन्त सिंह जी के 'काले कोस' उपन्यास में अंग्रेज़ों द्वारा बोयी गयी साम्प्रदायिकता का चित्रण किया गया है कि 'जो कुछ हुआ है ,उसमें मुस्लिम जनता का दोष नहीं है। यह सरासर अंग्रेज़ों की शरारत है कि आज भामली भाली जनता का ध्यान भूख ,प्यास, पूंजी के गलत बंटवारे,पूंजी पतियों के अन्यायों की ओर से हटाकर उन्हें धम। के नाम पर भटकाया जा रहा है–––लेकिन अन्त में मानवता की जीत होगी,मजदूरों व किसानों की विजय होगी,धर्म व जाति का भेद मिटाकर दुनिया के सब मेहनतकश इन्सान एक दूसरे के गले मिलेंगे।'[29] इस उपन्यास में अंग्रेज़ों की साज़िश व पूंजीवादी व्यवस्था का स्वर सुनाई पडता है तथा साथ ही भविष्य के स्वर्णमयी समाज का संकेतित रूप भी दृष्टिगत होता है।

जीवन मूल्य हर युग में बदलते रहते हैं किन्तु विभाजन ने हमारे मूल्यों व विश्वासों की जड़ें हिला दी।विभाजन के बाद परिस्थितियां तेजी से बदलने लगी। एक तो जीवन के प्रति उसकी प्रतिक्रियाएं तीव्र और संवेदनाए बहुत गहरी थी पर दूसरी ओर अभिव्यक्ति के परम्परागत संस्कार खोखले और कृत्रिम जान पड़ते हैं।धर्म के प्रति आस्था क्षणिक और बनावटी प्रतीत होती है जिसका उपयोग समाज को अन्धा एवम् नपुंसक बनाने के लिए कर रहे हैं।अपने धर्म के लोगों की संख्या बढ़ाने के लिए धर्मांतरण की प्रवृति की शुरुआत हुई। समाज में छोटी मोटी भागीदारी पाने के लिए लोग हिन्दू धर्म स्वीकार करते हैं।लेकिन वास्तव में ऐसे लोगों को दूसरे दर्जे के हिन्दू स्वीकारा जाता है।जब शादी ब्याह का प्रश्न उपस्थित होता है तो हिन्दू उन्हें लडकियां देने को तैयार नहीं। भगवान सिंह जी ने 'उन्माद' उपन्यास के अन्तर्गत सदानन्द जी की टिप्पणी इस प्रकार है–'यह किसी भरे डिब्बे में सवार उन्मादी लोगों जैसा है जो यात्रियों को देखकर कहते हैं –आ जाओ भाई, हमारे डिब्बे में आ जाओ, पर उनके पास आजते ही फाटक और खिड़कियां बन्द कर लेते हैं और कहते हैं –डिब्बों के बाहर लटक जाओ, इससे अधिक रियायत हम नहीं कर सकते ।'[30] हिन्दूधर्मी लोग संख्या में हिन्दुओं को बहुसंख्यक दिखाना चाहते हैं, यह धर्म की कट्टरता के सिवा कुछ नहीं।

धर्मान्धता या सत्तालोलुपता के कारण कह गई हिंसा,लूटपाट और अत्याचारों के विवरणों को जुटाकर उन्हें समकालीन परिप्रेक्ष्य में कमलेश्वर जी ने 'कितने पाकिस्तान' में यह बताने की चेष्टा की है कि किसी शासक की छोटी सी भूल भी भावी इतिहास को प्रदूषित कर सकती है और उसके कारण हिंसा का ऐसा दौर शुरू हो जाता है जो कई पीढ़ियों तक थमने का नाम नहीं लेती।'[31]राजनीति ने अवसरवाद को बढ़ावा दिया है,इस अवसरवाद के पीछे राजनेता स्वार्थता की पूर्ति करता रहता है।

भाषा को साम्प्रदायिकता के दायरे में लाना कट्टर धार्मिक सोच की परिणति है।उपन्यासकारों के मानवीयता के विचारों से युक्त भाषायी विचारों को महत्व दिया है। भगवान सिंह जी ने 'उन्माद' उपन्यास के अन्तर्गत रत्न नव–हिन्दुत्ववादियों के सम्पर्क में आने पर अपनी बातचीत तक में हिन्दी शब्दों का चुनाव करता है क्योंकि हिन्दू कट्टरपंथी हिन्दी को हिन्दुओं की भाषा मानता है । इसे देखकर प्रोफेसर वर्मा कहते हैं कि 'जो तुम्हारी भाषा है न,यानी तुम्हारी जुबान, इसे तुम गंगाजल में धोकर बोलते हो।इससे बचो। बड़ी मेहनत से हिन्दू शब्दों का चुनाव करते हुए तुम्हें बोलना पड़ता है। तुम ने इसमें महारत हासिल करली है।'[32]
साम्प्रदायिकता के दायरे में भाषा के आने सम्बन्धी विचार को मंजूर एहतेशाम जी ने 'सूखा बरगद' उपन्यास के अन्तर्गत सुहेल के माध्यम से उर्दू के प्रति प्रेम के कारण उर्दू को हिन्दी से श्रेयस्कर प्रदर्शित किया है कि 'प्रेमचन्द उर्दू के,कृष्ण चन्द्र उर्दू के, उपेन्द्र नाथ अश्क उर्दू के–बताओ हिन्दी ने पैदा कौन सा लेखक किया है।'[33] सुहेल अपने सम्प्रदाय के पक्ष में है इसीलिए उर्दू को अधिक महत्व देता है।दूसरी तरफ सुहेल की बहन रशीदा सोचती है कि मुसलमान को देवनागरी से तो हिन्दू को उर्दू से क्यों वंचित रखा जाता है।

आज के माहौल में व्याप्त साम्प्रदायिक सोच की वजह से भाषा भी साम्प्रदायिकता का हथियार बन चुकी है। अलका सरावगी ने 'कलि कथा वाया बायपास' में अमोलक कहता है कि 'हमें ऐसी भाषा की जरूरत है जिसे मुसलमान और हिन्दू समान रूप से अपनी भाषा मान सकें।'[34] भाषा के साम्प्रदायिक होने के पीछे लोगों की कट्टर सोच ही कार्यरत होती है।

आज बातों बातों में साम्प्रदायिक वातावरण का प्रभाव दृष्टिगत हो रहा है।किसी व्यक्ति का अस्तित्व धर्म से ही आंका जा रहा है। लोगों की भाषा पर साम्प्रदायिकता का रंग चढ़ता नज़र आता है।प्रियवद जी ने 'वे वहां कैद हैं' उपन्यास के अन्तर्गत दादू लोगों की भीड़ को देखकर एक व्यक्ति कहता है कि 'एक हिन्दू मरा पड़ा है। सिक्ख ने गाड़ी चढ़ा दी।सन्न रह गये दादू ।कैसी भाषा है यह !कहां जन्म लेती है। इन्सान नहीं मरा इन्सान ने गाड़ी नहीं चढ़ाई।'[35]

समाज में जो घटित हो चुका है, घटित हो रहा है,उसके दवाबों को इतिहास झेल रहा है। साम्प्रदायिकता जैसी अपराधी मनोवृति ने मानवीयता और मैत्री का संदेश देने वाली हमारी संस्कृति की नींव हिला दी है। समाज में साम्प्रदायिकता अपने चरम शिखर पर है। साम्प्रदायिकता का प्रश्न प्रबुद्ध जनों को बुरी मरह मथ रहा है। धर्म के प्रति आस्था क्षणिक व बनावटी है जिसका उपयोग समाज को नपुंसक बनाने के लिए किया जाता है। भाषा को साम्प्रदायिकता के दायरे में लाना कट्टरवादी सोच का ही परिणाम है। मज़हब अपने आप हानिकारक नहीं लेकिन इसकी आड़ में लोग स्वार्थ सिद्धि करने कर प्रयास करते हैं तब मज़हब अपने मूल आदर्शों से भटक जाता है। भारत में दिन प्रतिदिन धार्मिक और राजनीतिक तनाव बढ़ रहा है। अन्तहीन सिलसिला मनुष्य के अविवेक के कारण है या चालाक सताधारी वर्ग की साजिश के कारण।

साम्प्रदायिकता चाहे अल्पसंख्यकों की हो बहुसंख्यकों की वह हमेशा गलत होती है। उपन्यासकारों ने साम्प्रदायिकता के कारण होने वाले दुष्परिणामों को सामने रखकर पाठक वर्ग की आंखें खोलने का प्रयास किया है। सैंतालीस में बोया ज़हर आज भी समाज में अपने सफ़र पर है। संसार में जहां जहां विभाजन हुआ वहां वहां कभी न खत्म होने समस्याएं दृष्टिगत हो रही हैं।यह विभाजन राजनीतिज्ञों की कपट मानसिकता की उपज है। भाषा की संकीर्णता भी विभाजन का कारण बनी। साम्प्रदायिकता के नाम पर समाज में कई प्रकार की भ्रान्तियां चल रही हैं।उपन्यासकारों ने नैतिक मूल्यों के हरा्स व धार्मिक खोखलेपन का उद्घाटन किया है।साहित्यकार इतिहास नहीं लिखता अपितु इतिहास में निहित ज़िन्दगी लिखता है। रचनाकार अपने मन के भावनाओं, अनुभवों,विचारों के सामंजस्य से कृति की सृष्टि करता है ताकि जनता साम्प्रदायिकता की दलदल से निकल सकें।

सन्दर्भ ग्रन्थः–

1. गोरख पाण्डे, साम्प्रदायिकता के स्रोत, पृ 196।
2. Bipan Chandra, Communalism in Modern India, p.12.
3. समीक्षा, जुलाई,सितम्बर,1979, साहित्य बनाम साम्प्रदायिकता, पृ 6।
4. Jawahar lal Nehru, selected speeches, vol IV, by govt of india, p.12.
5. श्याम चरण दूबे, परम्परा, इतिहास बोध और संस्कृति,पृ 156।
6. डा रामनाथ शर्मा,डा राजेन्द्र शर्मा,सामाजिक विघटन, पृ 76।
7. नन्दकिशोर आचार्य, सर्जक का मन, पृ 54।
8. मैनेजर पाण्डेय, शब्द और कर्म, पृ 37।
9. कमलेश्वर, बंधक लोकतंत्र, पृ 14।
10. मुंशी प्रेमचन्द,
11. राज किशोर, अयोध्या और उसके आगे, पृ 16।
12. राम पुनियानी, साम्प्रदायिक राजनीतिः तथ्य एवम् मिथक,पृ 14।
13. प्रफुल्ल कोलख्यान, हंस,जनवरी,2002,पृ 67।
14. शंभु गुप्त, हंस,मई 2004, पृ 39।
15. कमलेश्वर, कितने पाकिस्तान,पृ 69।
16. वही पृ 179।
17. रवीन्द्र वर्मा ,निन्यानवें, पृ 185।
18. काशी नाथ सिंह, काशी का अस्सी,पृ
19. अलका सरावगी, 'कलि कथा वाया बायपास'पृ
20. दूधनाथ सिंह, 'आखिरी कलाम' पृ 389।
21. कमलेश्वर,कितने पाकिस्तान,पृ 69।
22. वही पृ 111।
23. वही पृ
24. अमृतलाल नागर, पीढ़ियां,पृ 359।
25. अलका सरावगी, 'कलि कथा वाया बायपास' पृ 165।
26. नासिरा शर्मा, ज़िन्दा मुहावरे, पृ 62।
27. वही पृ 32।
28. अमृतलाल नागर, 'करवट', पृ 297।
29. बलवन्त सिंह, काले कोस, पृ 261।
30. भगवान सिंह, उन्माद, पृ 206।
31. कमलेश्वर, कितने पाकिस्तान, पृ 69।
32. भगवान सिंह,उन्माद, पृ 127।
33. मंजूरहतेशाम,'सूखा बरगद', पृ 47।
34. अलका सरावगी, 'कलि कथा वाया बायपास' पृ 16।
35. प्रियंवद, वे वहां कैद हैं, पृ 96।